International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 11-10-2024, Accepted: 10-11-2024, Published: 25-11-2024
Volume 10, Issue 4, 2024, Page No. 37-40

राजस्थान लोकगीतों को प्रचारित करने वाले समुदाय: एक सामाजिक अध्ययन

रेश्मा निलंगेकर[1], शशिकला राय[2]
[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे, महाराष्ट्र, भारत
[2] प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे, महाराष्ट्र, भारत

सारांश
हमारा देश विशाल संस्कृतियों का मिला जुला रुप हैं । जिसमें विशाल जाति, जनजातियां शामिल हैं। उन जनजातियों ने अपनी लोक संस्कृति और लोक कला जीवित रखी हुई है। ये जनजातियां अपने लोककलाओं का प्रचार और प्रसार करते हुए संपूर्ण भारत में और विदेशों में भी दिखाई देते हैं। इन जनजातियों की कई पीढ़ियां हो चुकी है जो अपनी इन कलाओं को संजोए रखने में सक्षम हुई है। राजस्थान की भी कुछ ऐसी ही जनजातीय हैं जो अपनी लोककला के अंतर्गत लोकगीतों लोककथाओं लोकगाथाओं, लोकनाट्य आदि को जीवित रखने के लिए हमेशा प्रयत्न करती रही है। ये लोग अपने लोकगीतों से, लोकनाट्य से, लोकगाथाओं से लोगों का मनोरंजन करते हुए दिखाई देते हैं। शहरों की अपेक्षा ये गांव में अधिक देखने को मिलता है। अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संजीवनी देने का काम ये जनजातीय बड़े बखूबी से निभा रही हैं।

मूल शब्दः लोककला, लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य लोक गायक लोक गायिकाएं आदि।

भारतीय समाज को श्रम–विभाजन की दृष्टि से देखते हैं तो हम सीधे वर्ण व्यवस्था पर पहुंचते हैं। एक विशिष्ट परिस्तिथि में वर्ण–व्यवस्था, केवल श्रम–विभाजन की ही धार्मिक, पौराणिक एवं सामाजिक रुप में थी। क्षत्रियों का काम देश की रक्षा करना, वैश्यों का काम व्यापार, आदान– प्रदान, राज कार्य का काम चलाना, ब्राह्मणों का काम समाज में शिक्षा की व्यवस्था रखना और शूद्रों का काम गंदगी को दूर करना रहा है, सबसे गंदे काम इन्हीं के जिम्मे रहा हैं। वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप निश्चित रूप से चुका था। इस काल में ऐसी परिस्थितियां सामने आने लगी थी जो इस छोड़ स्थूल श्रम–विभाजन की सीमाओं को तोड़कर आगे बढ़ना चाहती थी। ज्यों–ज्यों मनुष्य प्रगति करने लगा त्यों–त्यों उसमें श्रम की अलग–अलग श्रेणियां बनती गई। महाभारत और रामायण के समय तक आते–आते अनेकों जातियां का अस्तित्व बना चुका था। यह जातियां किसी न किसी कार्य विशेष को लेकर बनी थी। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में विभिन्न कौमों के कर्तव्यों का उल्लेख किया है। समाज निर्माण के साथ ही श्रम–विभाजन आया और समाज के विकास के साथ यह श्रम–विभाजन अधिक से अधिक विशेषतापूर्ण बनता गया। धोबी, नाई, लुहार, कुम्हार, मिस्त्री, माली, बढ़ई आदि कार्य विशिष्ट जातियों को सौंप दिए गए। इस श्रम–विभाजन के अनुसार 'गाने' का जिम्मा भी कुछ विशिष्ट जातियों को दे दिया गया। इन जातियों ने समाज के व्यक्तियों के मनोरंजन का जिम्मा लिया और संगीत को अपनी आजीविका का साधन बनाया। भारतीय परंपरा में गंधर्व नाम बहुत पुराना है। गंधर्वों के नाम से हमारे संगीतज्ञों की 'जात' का संबंध जोड़ा जाता हैं। श्रम–विभाजन का यह दौर मुगल काल से और मुगलों के बाद राजस्थान के राजाओं तक आते–आते इतना फैल गया था कि साफ–साफ तौर पर दिखाई देने लगा था कौन किस गोत्र का है? किस जात का है? किस गति का है? इस काल में ही विभिन्न राजाओं, जम्मीरदारों आदि जातियां का इन गानेवालों का संबंध होता चला गया और वे उन्हीं 'दाताओं' के गीत गाते रहे। कभी किसी अन्य जाति के व्यक्ति ने गाना स्वीकार कर लिया तो उसे उस समाज से बहिष्कृत कर दिया गया और गानेवालों की श्रेणी में डाल दिया गया। तब से उनकी पीढ़ियां भी गाने वाली बनकर रह गई। पीढ़ियों तक चले आने वाला यह गाने का पेशा बड़ी अजीब बात थी। गाने में मेहनत तो है ही, साथ ही कलात्मक अभिव्यक्ति होने के कारण उसमें केवल समय या लगन ही आवश्यक नहीं है प्रतिभा भी वांछनिया है।[1]

लोकगीतों को दो प्रकार से समाज में गाया जाता है। एक वे गीत होते हैं जो शादी, सगाई, त्यौहार आदि सामाजिक या पारिवारिक उत्सवों पर घर के ही लोगों द्वारा गाए जाते हैं तथा दूसरा वे गीत होते हैं जो परंपराओं से गाना गानेवाली जातियां, घर–घर जाकर त्योहारों के अवसर पर यूं ही मनोरंजन के लिए गाना सुनाया करती है। गाने वालों की जातियों का विवेचन करते समय दूसरे रूप ही ध्यान दिया जाता है। पेशेवर गायकों की गायन शैली में और परिवार की गायन शैली में बहुत फर्क होता है। इन जातियों के गानों में लोक कला के तत्वों के साथ शास्त्रीयता का पूरा–पूरा स्वरूप दिखाई देता है। इनके गानों में अभिव्यक्त भावों का रूप औसत सामाजिक व्यक्ति की चेतना का अंश है । इनके गीतों की कल्पनाएं या प्रतीक, धुन या स्वरूप सब कुछ लोक संस्कृति की नींव पर निर्मित है। इस दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि राजस्थान के गाने वाली जातियों के बहुत से पृथक–पृथक भेद दिखाई देते हैं। मुगल काल से आज तक मुसलमान लोक गायकों की जातियां विशेष धाराओं में बंटी हुई है। विशेषत: ढोली, रावल और मिरासी तो कुछ ऐसी जातियां हैं, जो चौहानों, पांवरों राठौड़ों रॉव, भाटों, शेखों आदि कितने ही भागों में बंटी हुई हैं।[2]

सामाजिक रूप से पिछली शताब्दी से इन गाने वाली जातियों को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा इसलिए राजस्थान में गाने वाली जातियां आज बहुत पिछड़ी हुई है। इसके प्रमुख दो कारण हैं। एक तो संगीत को मुख्यतः विलासिता का साधन समझा जाता था। बहुत से गाने वाली जातियों ने गाने के साथ ही वेश्यावृत्ति का पेशा अपना लिया था। गाने वाले जातियों के पतन में इस स्थिति का बहुत बड़ा योग रहा है। दूसरा प्रमुख कारण था कि एक साधारण सामंती मान्यता थी कि वह हर व्यक्ति छोटा है जो अपने परिश्रम से, सच्ची मेहनत से, हाथ से मजदूरी करके अपने साधन जुटाता है और आदमी वह बड़ा है, जो राजा है जो सारे सुखों को बिना मेहनत किए भोक्ता है। यहां समाज में बड़े आदमी और छोटे आदमी की पहचान स्थापित हो गई थी। इस हालत में अन्य मजदूरी करने वाले कौमों की तरह गाने वाली कौम भी इस

सामाजिक व्यवस्था में जकड़ कर रह गई और उन्हें आदर का भाव नहीं मिल सका।[3]

राजस्थान में मुख्य निम्नलिखित गाने वाली जातियां हैं –

1. **रावल** – यह जाति चरणों को अपना यजमान मानती है। उनको यह खेल तमाशा दिखाते हैं यह गाने बजाने का काम करते हैं।

2. **डूम या डोम** – सर एच एम इलियट का मत है कि यह भाटों से उत्पन्न एक मुसलमान फिरका (ढोली) है मारवाड़ में ये मिरासियों तथा मुसलमान ढोलियों में फिरकों से अलग नहीं माने जाते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। यह भी गाने बजाने का काम करते हैं।[4]

3. **राणा** – मुंशी देवी प्रसाद के अनुसार ढोली जयपुर में राणा कहलाते हैं। राणा लोगों का कथन है कि वे रण में धूंसा(नगाड़े) पर चोट मारते थे इसलिए राणा कहलाए। शेखावाटी में राणा नगाड़ा बजाने का काम करते हैं और इस कला में भी बड़े माहिर हैं। जाखल के भेरू राणा शेखावाटी के सबसे श्रेष्ठ ख्याल गायको में है। शेखावाटी में मिरासी मुसलमान भी नगाड़ा बजाने के कारण राणा कहलाए जैसे प्रसिद्ध ख्याल लेखक और अभिनेता स्वर्गीय नानू राणा। विवाह के अवसर पर शहनाई के साथ तथा ख्यालों में भी ये लोग नगाड़ा–नगाड़ा बताते हैं और उनसे संबंधित है। यह राजपूतों से ही अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। फलौदी में फत्तूजी राणा अच्छे लोक कलाकार हैं। राणाओं का राजपूतों के विवाह में नेग बंधा हुआ है। तोरण, घोड़ी, छवरी (चवरी) के नेग बंधे हुए हैं। श्री शोभाराम (घाणेराव) गोड़वाड़ निवासी मांड–शैली के बहुत अच्छे गायक हैं।[5]

4. **लंगा** – लंगे राजस्थान के लोकगीतों की मूल परंपराओं को निभाए हुए हैं। ये जैसलमेर में अधिक पाए जाते हैं। यह मुसलमान है। ये कमायचा अच्छा बजाते हैं जो सारंगी से मिलता जुलता वाद्य है। इनको शास्त्रीय संगीत की भी जानकारी रहती है। ऐसा बताया जाता है कि ये चौहानों के यहां गाने जाते थे। जैसलमेर के राजाओं ने कुछ लोगों को आश्रय दे रखा है। खुडलिया, मोहनगढ़, जांध गांव में लंगा मुसलमान रहते हैं। इनके गुल्लूखां, करवाल आदि उस्ताद है। फलौदी से तीन मील पागियों की ढाणी में रमजू लंगा सरनाई (शहनाई) अच्छी बजाते हैं।[6]

5. **पातुर** – यह छोटी ढोलकी बजाते हैं। इनका नाचने और गाने का पेशा है। इनके पुरुष जागरी कहलाते हैं। ये भी नाच गाने का काम करते हैं और स्त्रियां वेश्यावृत्ति को भी अपने रहती हैं।

6. **ढोली (हिंदू)** – वर्ण व्यवस्था के अनुकूल ढोली अपना आदि संबंध शिव एवं पार्वती से मानते हैं। वस्तुतः यह प्रयत्न अपनी जाति की प्राचीनता एवं श्रेष्ठ को सिद्ध करने के लिए किया जाता है। ढोली अपना जन्म गंधर्वों से मानाते हैं। ढोल बजाने के कारण ये ढोली कहलाए। मांड गायकी की परंपरा को इन्होंने कायम रखा है। ढोली गाने बजाने का काम करते हैं। उदयपुर, जयपुर, बीकानेर और प्रतापगढ़ में अधिक विख्यात है। पेशेवर लोक कलाकारों में ढोली शायद सर्वश्रेष्ठ है। ढोलनों की आवाज बड़ी सुरीली होती है। इनकी आवाज इनकी प्राकृतिक देन है। पुरुष भी गाने में बड़े होशियार होते हैं। इनमें से कुछ शहनाई, ढोलक, तबला, सारंगी और नगाड़ा बजाने में भी पारंगत होते हैं। अलग–अलग जातियों में अलग–अलग ढोली होते हैं। ये ढोली अपनी जाति के 'मिजमानों' के अतिरिक्त मांगने नहीं जाते हैं। इनमें अनेक कांपें हैं। मुख्यतः यह है – भेट, कडवा, कालेट, जडिया, गीला, देहडा, देसार, बगार, तेरचा, डागी आदि। इन खोंपों के अपने जातिगत मिजमान थे। लेकिन अब इस प्रकार की स्वामी भक्ति की सीमाएं भी टूट चुकी हैं। इनके अतिरिक्त भी गेड़ा, खाबी, गीला, मोठिया, गोरेल, काठा, छिकिया, बेहल, सिया, रानीटा, धोला, कटार आदि और भी विभाजन है। इन जातियों का दर्जा बहुत नीचा माना जाता है। यह जाति हर जाति से मांग सकती है। इसके अलावा एक जाति ऐसी भी है जो ढोलियों के यहां भी गाने के लिए आती है, इन्हें गढमंगा कहते हैं। फलौदी पोकरण और राजलदेसर की ओर भी ढोलियों की बस्तियां है। सुजानगढ़ की ओर स्थित कूड़ी गांव के खेमचंद्र प्रकाश ख्याल गायकी के अच्छे गायक थे। गणपतलाल डांगी भी बहुत अच्छे गायक हैं। ढोली (मुसलमान) – मुस्लिम आक्रमणों के समय धार्मिक एवं राजकीय सुविधाओं तथा मुसलमान की आकर्षक क्षमता की भावना के कारण कितने ही लोगों ने मुसलमान धर्म का अंगीकरण किया। मुसलमान ढोली स्वयं को सुन्नी कहते हैं। किसी समय हिंदू परिवारों से इनका संबंध था। इनके रीति–रिवाज हिंदू ढोलियों से मिलते–जुलते हैं।[7]

7. **भगतण** – वेश्याओं की यह एक जाती है जो नाचने गाने का काम करती है। ये मुसलमानों के साथ भी रहती है। कहा जाता है कि रामावत साधुओं की लड़कियां भ्रष्ट हो गई थीं। साधुओं के समाज में उनका पानीग्रहण संस्कार नहीं हुआ। इन्हें साधु कन्याओं से यह जाति बनी। इस जाति के पुरुषों को भगत कहते हैं। इनके घरों की लड़कियां ही वेश्यावृत्ति अपनाती हैं। इनके घर पर जो बाहर से स्त्रियां आती हैं वे नहीं अपनाती। ये जोधपुर की ओर अधिक मिलती है।

8. **कलावंत और कव्वाल** – ये गवैये और बजैये होते हैं। मारवाड़ के कलावंत सुन्नी मुसलमान है। कहा जाता है कि इनमें से कुछ गौड़ ब्राह्मण और कुछ टांक चौहान राजपूत थे किंतु इनको बाद में मुसलमान बना दिया गया। मारवाड़ में महाराजा मानसिंह के जमाने में इनकी उन्नति हुई थी। यह मिरासी मुसलमान हैं। सिरोही में राणे भी कलावंत कहलाते हैं। कलावंतों की इस जाति में तानसेन का जन्म हुआ था। इस जाति में आज तक गाना सिखाने वाले को तानसेन के नाम का डोरा बांधा जाता है। कव्वालों का आविर्भाव भी कलावंतों से हुआ है। अमीर खुसरो स्वयं संगीत के महान विद्वान थे। इन्हीं के काल में सामूहिक रूप से सूफियों की कव्वालियां शुरू हुई। कलावंतों के घराने में अधिकतर शास्त्रीय संगीत की परंपरा सुरक्षित रही ।है ये लोग अमीरों की नौकरी में रहे और ध्रुपद गान में सिद्धहस्त हुए। इस जाति की उपजाति के वंशज डागर बंधु आज भी ध्रुपद शैली की गायिकी के प्रसिद्ध गायक है। इस जाति में हिंदू मुसलमान का एक अनोखा मिश्रण है। कुछ लोग नाम में श्खांश लगते हैं तथा कुछ लोग श्सेनश लगते हैं–जैसे रहमान खां और अमृत सेन।[8]

9. **राव** – राजस्थान के गांवों की जातियों की पीढ़ियों को सुरक्षित रखने का काम राव करते हैं। ये गाने में कुशल होते हैं। मौलिक कविताएं करते हैं और धुन भी बनाते हैं। राजपूत लोग इनका बहुत आदर करते हैं। इनका जीवन राजपूत से मिलता हुआ दिखाई देता है। मेवाड़ में यह काफी संख्या में है। जेवाणो, नाथद्वारा के पास लाल मादड़ी, बंबोरा कुरावड़ आदि में इनकी बस्तियां अधिक पाई जाती हैं। पुत्र–जन्मोत्सव, विवाह आदि के अवसर पर इनको नेग

(बक्षीस) मिलता है। राजपूतों की खांपों में इनके गोत्र मिलते हैं, जैसे गहलोत, चौहान, पंवार आदि। ये हिंगलाज देवी की पूजा करते हैं। हरलालजी भाभा कोठारिया के बड़े अच्छे कवि हैं। कुरज के लक्ष्मीनारायण राव लोकगायक एवं नर्तक है। राव डिंगल के विद्वान होते हैं। इनमें कविता करने की इनकी परंपरागत एवं प्राकृतिक शक्ति होती है।[9]

10. भाट – यह बहुत प्राचीन जाति है। इनका पेशा रावों से मिलता–जुलता है। बही भाटों की रीतियां राजपूत से मिलती हैं। बही भाट हजारों वर्षों की अपनी जजमानों की पीढ़ियों को अपनी बहियों में सुरक्षित रखते हैं। ये प्रतिवर्ष अपने जजमानों के पास जाते हैं। इनका नेग बंधा हुआ है। ये वंश वृक्ष रखते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी ठीक रहती है। उनकी रीतियां ब्राह्मण से मिलती–जुलती है। यह अच्छे विद्वान भी होते है। कहीं–कहीं यह लोग गाने का भी काम करते हैं। विवाह के अवसर पर इन्हें इनाम मिलते हैं। राणी मंगा भाट केवल रानियां की ही वंशावली रखा करते हैं। भाटों की ही एक जाति और है जो भाट चारण कहलाती हैं। मारवाड़ में भाट रासधारी नाचते हैं। कुछ कठपुतलियां भी नचाते हैं।[10]

11. भोपा – ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने प्रदर्शन दिखाते फिरते हैं। इनकी स्त्रियां बहुत ऊंची आवाज में गाती हैं। ये अन्य राजस्थानी लोकगीत भी गाकर सुनते हैं – जैसे सुवटिया, मूमळ, बिछुड़ो आदि। यह फटे हुए वस्त्रों में घूमते–फिरते हैं। भोपी मधूर गानेवाली होती है और रेगिस्तानी खुले मैदानों में अर्धरात्रि के समय इनका स्वर भी जमता है। भोपों के कई भेद हैं। माताजी, गोगाजी, भैरूजी, पाबूजी, देवजी, डूंगजी–झुंवारजी, बलजी–भूरजी आदि के भोपे अलग–अलग हैं। 'पाबूजी के भोपे' रावणहत्थे पर पाबूजी की विरुदावली गाकर सुनाते हैं। इनका वाद्य बड़ा सुरीला बजता है। शेखावाटी, बीकानेर एवं जोधपुर की कुछ हिस्सों में डूंगजी–झुंवारजी एवं बलजी–भूरजी धाड़ियों की विरुदावली कुछ भोपे रावणहत्थे गाकर सुनते हैं। ये भोपे अपने–अपने इष्ट देवताओं के गीत गाकर सुनाते हैं। रामदेवजी के भोपे (कामड़) मारवाड़ की ओर है। ये तंदूरा बजाते हैं। शेखावाटी की ओर चमार रामदेवजी के पुजारी हैं। कहावत प्रचलित है कि 'रामदेवजी ने मिल्या जिका ढेढ ही ढेढ'। भैरूजी के भोपे माथे में पर सिंदूर लगाते हैं। कपड़ों में तेल डालते हैं। ये त्रिशूल धारण करते हैं। गोगाजी के भोपे–नायक, चमार आदि हरिजन जातियों में हैं। गोगाजी के भोपे सांप का जहर उतारते हैं। माताजी के भोपे दूल्हे का सा वेश धारण करते हैं।[11]

12. ढाढी – ये लोग भी जजमानों की विरुदावली सुनते हैं। इन्हें वंशावली कंठस्थ याद रहती है। इनका स्तर नीचा देखा गया है। आर्थिक दृष्टि से भी ये हीन होते हैं। 'ढोलामारू' प्रसिद्ध लोक काव्य के रचयिता भी यही बतलाए जाते हैं। इनके गानों में बड़े परिपक्व हैं। ये हिंदू भी होते हैं और मुसलमान भी। चिकारा नामक वाद्य बजाते हैं। हिंदू ढाढ़ी विश्नोइयों, जाटों और सुनारों से तथा खत्रियों से भिक्षा मांगते हैं। ये गायक होते हैं। ये लोग राजपूत और सिंधी मुसलमान की वंशावलियां रखते हैं। यह राजपूती प्रथाओं को भली–भांति निभाते हुए दिखाई देते हैं। इनकी स्त्रियां गाती हैं किंतु नाचती नहीं।[12]

13. मंगणियार – ये भी मुसलमान होते है। संभवतया पहले ये ढोली जाति से संबंधित थे। क्योंकि इनकी कांपें उनसे बिल्कुल मिलती हैं, जैसे – देघड़ा, वेद, बारणी सोनलिया आदि। मंगणियार का मतलब होता है – मांगने वाला। इस जाति के लोग गाने वालों में भी निम्न कोटि के समझ जाते हैं।[13]

14. फदाली – यह लोग कूंजाड़ो, कसाइयों तथा घाचियों के गवैये होते हैं। यह भी मुसलमान होते हैं और इनका रहन–सहन रीति–रिवाज सब कुछ मुसलमान जैसा होता है। उनकी स्त्रियां गाने के लिए नहीं जाती है। ये लोग मुसलमान के धार्मिक उत्सवों के समय हरा, लाल झंडा लेकर गाते हुए जुलूस निकालते हैं। पीर और मीर आदि की आराधना करते हुए गाने के लिए आमंत्रित किए जाते हैं।

15. मिरासी – इनकी कांपें ढोलियों से मिलती–जुलती है। पीढ़ियों से उनके गाने का पैसा चला आ रहा है। इन जातियों के लोग की संख्या बहुत नहीं है। जोधपुर, नागौर, डीडवाना में इनके अधिक घर है। कानोता, जोड़ा, कालेट आदि उपजातियां हैं। यूं तो यह लोग अपने को अरब देश का बताते हैं लेकिन वस्तुतः यह लोग भारतीय ही थे। इनकी एक और उपजाती कानोता अपने पूर्वजों को गौड़ ब्राह्मण बताते हैं।

16. पतार – गाने को अपनी जीविका साधन बनाने के साथ जिसने अपने शरीर का क्रय–विक्रय भी प्रारंभ कर दिया, उसे पतार कहा गया। स्वयं यह पेशा करने वाली स्त्री पातर कहलाई और उनके भाई–भतीजे जागरी कहलाए। पातरों में सामंत काल में अपने–अपने स्वामियों के प्रति स्वामी भक्ति थी। उसी कारण विशेष पातरों ने अपना संबंध विशेष जाति से ही रखा। उन्होंने गाने के लिए गाना, अपना ध्येय नहीं रखा बल्कि विलासिता की सामग्री के रूप में गाने का आकर्षण अवश्य बनाए रखा।[14]

17. नट – अपने शरीर को चुस्त हुआ फुर्तीला बनाने में नट जैसी अन्य कोई कौम नहीं है। नोटों में गाना–बजाना भी होता है। यह जाति भी हेय दृष्टि से देख जाती है।

18. कंजर – कंजरिया नृत्य में बहुत प्रवीण होती हैं और घर–घर जाकर नृत्य से पैसा भी काम आती है कंजूरिंग की पोशाक के अत्यंत कलात्मक होती हैं वह अपने अंग को नाना प्रकार से के गोंडवाना से गोंदकर सुंदर बनती है पंजर पुरुष भी नाचते हैं आमतौर पर पुरुष ढोलक और मंजीरा बजाते हैं और कंजरिया नाचती हैं राजस्थान के प्रेम और श्रृंगार के गीत करने में यह बड़े परिपक्व होते हैं यह अजमेर की और अधिक मिलते हैं कंजर जाति से हिंदू है उनके प्रसिद्ध गीत यह हैं –

1. ढोला ढोल मंजीरा बाजे रे, काळी छांट रो घाघरो नजारा मारे रे।
2. गोरबंद और काजळियो।[15]

19. वैरागी – जाति से ये साधु हैं और इन्होंने अपनी आजीविका के लिए मुख्य व्यवसाय गाना ही बना रखा है। राजस्थान में रासधारी शैली में जो नृत्य–नाट्य प्रचलित हैं उनमें यह बड़े कुशल होते हैं। ये सुगणी भजन भी गाते हैं।

20. काळबेलिया – यह एक घुमक्कड़ जाति है। यह पूंगी और खंजीरा बजाते हैं और गाते भी हैं। ये गांवों में अपना मनोरंजन प्रदर्शित करते हैं। इनकी स्त्रियां भी गाती है। इनकी पोशाक काले रंग की और बड़ी कलात्मक होती है।

भगवा वस्त्र, सिर पर साफा बनते हैं और अपने आप को नाथ पंथी बदलते हैं। सांप दिखना इनका प्रमुख व्यवसाय है। ये जड़ी–बूटियां भी रखते हैं। सर्प और बिच्छू के डंक और दर्द को दूर करने वाली जड़ी बूटियां लोगों को देते हैं। ये बाज से खेलते भी दिखाई देते हैं। ये डरों में रहते हैं। ये अपनी पूंगी में निम्न गीतों की धूनों का अधिक प्रयोग करते हैं। जो बड़ी ही मोहक होती है–

1. **लूर** – 'सागर पाणीड़ै नै जाऊं नजर लग जाए'।
2. **पनिहारी** – 'कुण रे खुदाया कुवा बावड़ी ए पणिहारी ए लो'।[16]

निष्कर्ष

इस प्रकार राजस्थान में अनेकों गानेवाली जातियां हैं। जिनका प्रमुख पेशा लोगों का मनोरंजन करना है। जीवन की कमाई गाना बजाना। पिछले दिनों की आर्थिक, प्रकृति, औद्योगिक विकास के कारण ये गानेवाली जातियां अपने सच्चे स्वरूप को खो चुकी है। लेकिन गांव में उनका आज भी मुख्य स्थान है क्योंकि वहां सामंती संस्कारों को अभी पूरी पराजय नहीं मिली है। सिनेमा के प्रभाव से इन जातियों ने अपने पुश्तैनी गीतों को छोड़ दिया है। कमाई के अभाव में लोकगीतों को गाने का पेशा कम होने लगा है। यह जातियां आज भी हीना अवस्था में है और हीनता का भाव स्वयं इन जातियों के लोगों में गहराई से जम गया है। अंत में यह कहना विसंगत नहीं होगा कि गानेवाली जातियों के सामाजिक अध्ययन की और संभवत यह पहला प्रयत्न है इस विषय पर गंभीर खोज करने की आवश्यकता है क्योंकि लोकगीतों के संरक्षण और प्रचार में इन जातियों का विशेष योगदान रहा है।

संदर्भ सूची

1. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति, सं. मनोहर प्रभाकर आशा पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर। पृ.सं.104
2. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति, सं. मनोहर प्रभाकर आशा पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर। पृ.सं.105
3. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति, सं. मनोहर प्रभाकर आशा पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर। पृ.सं.106
4. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.71
5. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.71
6. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.71
7. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति, सं. मनोहर प्रभाकर आशा पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर। पृ.सं.107
8. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.72
9. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.73
10. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.74
11. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.75
12. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.74
13. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति, सं. मनोहर प्रभाकर आशा पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर। पृ.सं.108
14. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति, सं. मनोहर प्रभाकर आशा पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर। पृ.सं.109
15. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.79
16. राजस्थान का लोक संगीत: देवीलाल सामर, गींडाराम वर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थानी ग्रंथागर, जोधपुर, संस्करण – 2019, पृ.सं.77